गौरव पब्लिशिंग हाऊस

कमलेश कपूर

अस्तित्व के परमाणु

वितरक :
स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट (लि०)
एल-10, ग्रीन पार्क एक्सटेन्शन
नई दिल्ली-110016

अस्तित्व के परमाणु

गौरव पब्लिशिंग हाउस, 695, मॉडल टाउन, जालन्धर द्वारा प्रकाशित
एवं संजय प्रिंटर्स, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा
मुद्रित।

समर्पित

मेरे पति को—मेरी अनुभूतियों
के साझीदार···

भूमिका

कविता यदि आत्मा का रुझान और मन का लुभान है, तो उसे परिभाषित करना उससे उसका निहित माधुर्य छीनना है। इसलिए मैं एक लम्बी भूमिका बाधने का यत्न नही करूंगी, न ही पाठको को कविता से परे ले जाने का प्रयास। फिर भी इतना कहना अभीष्ठ है कि इन कविताओंमे मैंने तीन विभिन्न प्रकार की शक्तियों का सन्तुलन और समीकरण खोजने का प्रयत्न किया है। मानव का स्वभाव, सामाजिक वृत्तियो और दैविक शक्तियो का यदि कोई समीकरण नही है तो वह मुझे अभी उपलब्ध नहीं हुआ। हा, निरन्तर खोज के अन्तर्गत अनुभूतियो की जो निधि मुझे मिली उन्ही को मैंने वैसे का वैसा शब्दो मे बांध दिया। यदि पाठको को मेरे प्रश्नो का उत्तर और सृष्टि में रचे कर्मयज्ञ का कोई प्रयोजन मिल पाए तो वह मेरी खोज का निर्माणात्मक फल होगा।

क्रम

कुछ ऐसा आविष्कार करूं,
समय को गति के विपरीत जाऊं।
धरती चले पूर्व की ओर,
मैं गर्दिश पश्चिम ले जाऊं।
वर्तमान के कुछ प्रहर एक युग बनाऊं।
सभी कुछ परिवर्तन से उतरे,
और मैं उन्हें शाश्वत बनाऊं।

आत्मा की कौन सी भटकन है,
जो मुझे रुलाए,
सहस्र मील चलाए,
फिर काटों में उलझाए।
कहीं तो उसका अन्त होगा,

भटकन की सीमा पे, बैठने को पत्थर होगा।
किसी का मीठा स्वर होगा
रूह को रुझाने वाला संगीत होगा।
उत्सुकता यही नहीं कि वहां क्या होगा,
जिज्ञासा यह है वह अन्त कब होगा।

इतिहास के वे पन्ने
दुबारा लिखे तो जाएं,
रचाएं न जाएं।
खोया हुआ अतीत—
उसका नाटक बनाएं।
मंच पर हुई भूमिका में खो जाए।
तालियां बजें, पर्दा गिरे,
अभिनय अत्योत्तम रहे।
अतीत मेरा था मैं उसी में जीया।
कैसा नाटक ? किसका अभिनय ?
हमने तो तथ्यों को ही यथार्थ किया!

मेरे छोटे संसार में
परिवार ही हो सब कुछ मैं नहीं
ऐसा विधान क्यों ?
मेरे पास से अवसर निकलें
और मेरा ध्यान उधर नहीं
ऐसा क्यों ?
जीवन कहने को मेरा, पलों में सांसें मेरी,
उन पर मेरा ही अधिकार नहीं,
ऐसा क्यो ?
अपनत्व का त्याग, इच्छा बलिदान
तपस्या की यह पहचान नहीं
ऐसा क्यों ?
इन शब्दों की परिभाषा गलत
मेरे कर्तव्य का आधार सही,
मैं तो मानूं संसार नही
ऐसा क्यों !
शास्त्रों में अनेक प्रश्न, सहस्र उत्तर
मेरे प्रश्नों का उत्तर वहां नही
ऐसा क्यों ?

एक अन्धी आस्था थी कर्तव्य के प्रति,
जो मेरी शत्रु बनी।
धर्मपालन में असीम श्रद्धा ही,
मेरी प्रगति में बाधक बनी।
आकांक्षा मुझे ख्याति के किनारे लगाती,
यह घोर तपस्या तो बेनाम बनी।
भक्त की भक्ति ही क्यों इस प्रकार
मेरी व्यथा का कारण बनी?

फिर एक मनमानी हुई,
संकल्प के सैकड़ो बुत गिरे।
अग्नि के प्रमाण, तत्वों की साक्षी,
इस एक ही निर्णय से आहत हुए।
हम माने जिसे दैविक शक्ति,
वे दबी चंचल इच्छाओं तले।
वह कैसी जर्जर नींव थी,
जिसपे हमने ये महल धरे।

हम दो जन विपरीत कोण
जोड़ होगा पर मेल नहीं
लकीरें हटीं तो मर्यादा घटीं
वह अधूरे मैं बेनींव
दूरी यों लांघना असम्भव !
सदभावना की लहरें जो बीच
यही क्या पुल, व मिलन की रीत ?

विरह की आग में जलूं
या वैराग्य से शान्ति पालूं?
दोराहे पे निर्णय का अवसर पाया,
सोचा राह यह लूं या वह लूं?
राह दूसरी का हो अवलम्बन,
रुदन और स्वत्व खोने से टक्कर न लूं,
यथार्थ का कभी सामना ही न करूं?
राह पहली पर यदि हो गमन,
कर्मयोगी का धर्मपालन क्या हो?
हम यदि यह जान पाएं; तो
स्वयं से कहीं आगे बढ जाएं।

उस निश्चय का क्या करूं,
जो आत्मा के बन्धन से पाया।
भविष्य के उस सपने का क्या करूं,
जो दोनों ने मिल कर सजाया।
उस वचन का क्या करूं,
जो वर्षों पहले दिया ?

तत्वों के प्रमाण, समाज की गवाही,
इनसे मुख मोड़ भी लूं,
तो अपनी आस्था का क्या करूं
जिसे जी जान से दिया।

उनके लिए एक कहानी—
मेरी खुशी मेरी व्यथा,
उनकी कल्पना के रंग में
मेरी आशा और निराशा,
वह खुश, कहानी में अंश
त्रास का,
और सूई की चुभन में
दुःखान्त मेरी कहानी का,
जीवनाधार क्या वह गृह—
वह दैविक शक्तियां ?
या फिर उनके भाव, उनकी वृत्तियां ?

नारी धर्म का हर चरण हो कठिन,
हर क्षण एक अग्नि परीक्षा हो।
ममता के हों लाख बन्धन,
कर्तव्य के सहस्र आदेश हो।
संविधान में समानता के हों आश्वासन
ऐसी परिस्थिति में वह कैसे पूरे हों ?
न्यायरोधक परीक्षा के यह यन्त्र हों समाप्त
फिर संविधान की इस श्रेणी का पालन हो।

हमने भी खूब खेल खेले,
बहुत दाव चले,
हारे नही, बहुतों को हराया ही,
कहते है जीत सदैव रही,
सिंह राशि के साथ ही।
वर्ष बीते, यो युग बीते,
पासे पलटे और मात लाए साथ ही।
भौचक, आवाक् हम,
रुके, चले, चलते-चलते रुके,
सोचा, वह सिंह राशि क्या हुई ?
फिर ज्ञानी आए, ग्रह चक्रों की
परिभाषा हुई,
विधि की विडम्बना सही,
कि जिनसे मात खाई
उन बच्चों ने भी राशि, सिंह ही पाई !!

जिस आंधी ने मुझे झकोरा,
वह आंधी मेरे भावों की थी।
तरु ध्वस्त हुए पत्ते बिखरे,
पतझड़ वह मेरे जीवन की थी।।

वसन्त और पतझड का एक अटूट नाता है,
एक के बाद एक पुनः जाता और आता है।
जीवन के वसन्त की है बात ही कुछ और,
न लौट कर आने को वह निर्मोही जाता है।
जीवन के साथ जाने वाली पतझड़ लाता है,
इस चिरंतन सत्य से अक्षुण हमारा नाता है।।

उत्सवों के वीराने जो मुझे खाएं,
खुशियों की लहरें झूमें जो,
न ग़म को झकोरें न मुझे छू पाएं !
मेरे लिए वह कौन सा मेला रचें;
जो मुझे रिझाए, स्वयं से भुलाएं,
मेरे ही ग़म से मुझे पराया बनाएं !

किनारा जो बोला तो दूसरे किनारे से
प्रश्न किया,
"पास आ, करीब आ, तू दूर क्यों ?
पानी हमारी निधि हम है संरक्षक
भूलू यदि इसे तो मर्यादा घटाऊं,
वही तुम ले लो लहर से मैं जो
स्नेह भेजूं
कुछ और देते-देते तुम्ही को डुबाऊ ?"

मेरे सामने मर्यादा थी, कटघरे थे,
आघात रोधक सिलसिले थे,
हम निःशस्त्र न थे।
उधर एक जंगल था,
वार भी थे छिपे-छिपे से।
उधर क्या कुछ थे,
इधर क्या-क्या न थे,
ये केवल गणित के प्रश्न ही न थे,
ये प्रकृति की प्रतिद्वन्द्वी वृत्तियों के,
यथार्थवादी सिलसिले थे।

ये कैसे स्वर ताल हैं
जो पीछे मुझे खीचें ?
जाने को मैं अधीर, राह मेरी रोकें ?
अतीत की वे मधुर स्मृतियां,
भविष्य के वे सपने
दोनों की प्रतिकूल शक्तियां
विपरीत दिशा में खीचे
वे क्षण जिनमें बचपन के
हास्य थे छिपे
उन्हें लुटा जो पाऊं
तो साकार करूं सपने ।

मेरी राहों पे क्यों इतने मोड़
मुझे असमंजस में डालें
अन्धी गलियों में धकेलें ?
जीवन सुलभ—जो हो एक हेतु
सहस्त्रोन्मुख मार्ग पे राह कैसे खोजूं ?
उपलब्ध हो आत्म ज्ञान की
निमित्त एक घड़ी
दिव्य ज्ञान की वह बने प्रथम सीढ़ी।

मेरे चारों ओर सुख का सब सामान
उनके बीच जैसे मैं ही नहीं
मेरे विचारों का एक अलग संसार
जिसमें सुख के ये साधन नहीं

वास्तविकता जो मुझे घेरे प्रतिक्षण
उसके साथ इस संसार का कोई नाता ही नहीं

सुख का आधार ये साधन
या फिर मेरी सही मनोवृत्ति ?
इधर भौतिक सुख, उधर उनका उपभोग
बीच में एक दीवार खड़ी
क्या वह दीवार मेरी ही है मनोवृत्ति ?

मेरे रोने से वायु के रुख बदले ?
नक्षत्र के फेर बदले ?
मैं इक अदना कण, ब्रह्माण्ड विशाल
मेरी व्यथा से विराट रूप का प्रयोजन बदले ?
विधि के विधान में, भावी के नियम में
कण का क्या काम ?
इस ज्ञान से प्रकृति का क्या रूप बदले ?
रोशनी की यह खोज, निरर्थक !
ज्ञान की इस खोज में,
असफलता का क्षोभ पाऊं या गीत बन जाऊं,
यह जान लूं, तो भी क्या मेरी दिशा बदले ?
दिशान्त बदले ?

मालूम नही यह द्वार क्यों खुलते हैं
फिर क्यों बन्द होते है,
दिलों में भाव जो आते हैं
स्वर-ताल में कैसे बन्द होते है
बचपन की सुन्दर कल्पना में
रंग कौन भरता है
आकार कैसे बन्द होते हैं ?
किसी का तो अदृष्य वह हाथ होगा
जिसके संकेत मात्र से हो
दिन दिन होता है और
अन्धेरे रातों में बन्द होते हैं ।
इसी ज्ञान की खोज से गौतम
बुद्ध बने,
उनके अनुभव व रहस्य उन्ही में समाए ।
हमारी आत्मा के द्वार तो अकसर
बन्द होते हैं ।

आकांक्षा ने मुझे प्रेरणा दी
आत्मविश्वास दिया।
कर्म की शक्ति दी, कर्म का आधार दिया।
उसमें उलझने से सभी कुछ दूर हुआ
फल पे चेतना केन्द्रित, मैं अपनी सीमाएं भूला
और भूला यह मेरे कर्म,
कर्म की नीव मेरी है ही नही।
मैं हूं किसी और की प्रेरणा,
किसी के खेल की बनती बिगड़ती आकृति।
अथाह सागरो की सतह पे
मैं एक चंचल हलचल मात्र
मेरा क्या? जो अस्तित्व ही मेरा नही
इस सच पे मान नही, गर्व नही,
यदि आधार ही बना पाऊं,
तो क्यों न ज्ञान और विवेक पे स्थिर हो जाऊं।

मरने पर मेरी समाधि बने,
और नेताओं के वक्तव्य हो,
गिने चुने शब्द लें,
और सजाएं उस समाधि पे।
मुझे है यह-अस्वीकार!
प्रशंसा के शब्द सुनूं
तालियों का नाद भी
प्रशंसनीय मेरा हर कर्म हो
मेरी आन्तरिक तुष्टि उपहार हो
मेरे श्वासों में उसका गुंजन हो
यह हो सब मेरे सामने
अपनी इन्द्रियों पर विश्वास हो,
मेरा कर्म एक जीवित समाधि हो।

रेत के ऊपर एक किश्ती आई
वह मेरी थी।
जिस लहर ने उसे थपेड़ा दिया,
भाग्य की वह लहर भी मेरी थी।
कहानी जो खत्म न हो पाई,
वह कहानी मेरी थी।
मुझे क्या लहरों से लड़ना न आया?
या रेत में फंसने को रोचक पाया?
चेतन से तो ऐसे प्रश्नों का
कोई उत्तर न पाया।
अब तो एक रेत-पूरित प्रबल झंझावात आए
और किश्ती को शायद जल में ले जाए!

शिराओं में जो रक्त बहा
उसने एक नाता बनाया।
नाते का वही एक आधार न रहा,
मोह ने भी उसे सजाया।
उसे पनपने को किन्तु कुछ और भी था चाहिए
हर क्षण त्याग का सिंचन था चाहिए
बाहरी शक्तियों की चोट से था उसे बचाना
बीच से भ्रांति के भ्रम-जाल को हटाना
कठिन नहीं है कोई सम्बन्ध बनाना,
बहुत है कठिन उसे बचाए रखना।

झटका कुछ ऐसा लगा
मैं गुफा के अन्धेरो में डूबता गया,
ऐसा कुछ अहसास हुआ
मेरे साथ धोखा हुआ, अन्याय हुआ।
मैंने तो किसी का कुछ बिगाडा नही,
कभी तो किसी का दिल दुखाया नही,
फिर मेरे साथ हुआ यह क्यों ?
मैंने यह दुःख पाया क्यों ?
कहते है चुभन तो है क्षणिक किन्तु,
यातना है आयु भर के साथ।
उसे लिये मैं कहा-कहा मारा फिरू ?
मानस के बोझ को कैसे हल्का करूं ?
यदि मेरे कर्म का यह नहीं है फल,
और यदि यह बश है दैवी शक्तियों के,
और ग्रहो का फेर है ?
तो पाप-पुण्य के हिसाब में
कर्म-गति का क्या मेल है ?

गैरों ने मुक्का दिखाया या दी गाली,
किसी भी कर्म के कोई नही है माने
जीवन का भाग यह सब,
इसकी गति वदल न पाई,
चोट जो गहरी खाई,
वह अपनो ही की शिकन से पाई।
यह नाती वह अपने,
आशाएं रौंदे, निराशा बरसाएं
यह भी है जीवन का अंश
यही वात समझ न आए !

तथ्यों से जब भी घुटन हुई,
मैंने यथार्थ से मुंह फेरा।
और देखा वही जो देखना चाहा,
नाटक का सृजन किया आशय मनचाहा।
प्रियजनों ने जब भी यह कहा, वह वहा,
मेरी कल्पना ने उसमें सुन्दर रंग भरा।
भला सौरभमय संसार में,
कुरूपता, कटुता विकार का क्या काम ?
सद्जनों के भाग्य में अन्याय का
क्या स्थान ?
मेरा ही मन बावरा ठहरा,
सिकतो से निरन्तर घरौंदा किया निर्माण।

पैदा होते ही कुछ नाते बने,
एक वातावरण सा रचता पाया।
वह भला था, बुरा था
सांसों के साथ जुड़ा था।
बड़े हुए तो पैर पटक-पटक कर
कुछ मांगे जताई।
पाठशाला गए तो बुद्धि और तर्क से
अधिकार गिनाए,
भूल गये नाते जन्मते जो है,
वह मर भी जाते है !
हर धागे की शक्ति कहीं तो निर्बल
होती है,
दबाव ही दबाव से जरजर हो जाती है;
हर नाता यदि है बन्धन तो काट दो इसे
इक तरफा नाता तो वैसे भी क्षणिक ही सा है।

निर्णय नित्य होते गए अर्थहीन विषयों पर,
क्षण लुटते गए लुटते खजाने की तरह।
तात्पर्य और यत्न के बीच इक दूरी आई,
और दूरी फिर बढ़ती गई बाढ़ की नदी
की तरह।
जीवन यही है यदि और, भविष्य की
योजना भी यही,
तो लुटने दो सब कुछ मेरा भी, पहले की तरह।

मैं जो मिलने गया उनसे
एक मन्द मुस्कान ने किया स्वागत मेरा,
शून्यता की आशा थी मुझे,
इस न्यूनता ने लौटाया आश्वासन मेरा।
फिर सरल स्वभाव से इधर-उधर की
वात हुई।
उनके इतने से उत्साह ने कई,
उमंगें जगाई।
मैं किस हेतु गया, उन्होने क्या अर्थ लगाया।
वार्तालाप के इस भाग पर रहा
एक साया।
अन्त: परीक्षण में वह गुथे नहीं।
सामान्य विषयों पर हुई जो टिप्पणी,
उसी के अवशेष मैं संग ले आया।

ये नाते ये ममता के वन्धन,
मैंने कैसी-कैसी डोरी बनाई,
कैसे उत्तम रंग हो फहराए
बंधन की गठन में, शक्ति में,
सौ-सौ सपने सजाए।
एक ओर त्याग वलिदान,
दूसरी ओर पाने की इच्छा
और अभी और, मांगे बढ़ाईं
अधिकार जमाए
समय के साथ-साथ यह वदलता नहीं
क्रम का हिसाव उल्टा हुआ नहीं
इससे पहले कि निराशा और
शोक पाऊं
क्यों न सपनों का ससार मिटाऊं,
और यथार्थ पे उतर आऊं।

शास्त्रों ने मुझे सिखाया
नींव की मैं शक्ति देखूं शिखर की
आस न करूं।
कर्म की महिमा देखू,
फल की अभिलाषा न करूं।
साधन को अपनाऊं,
साध्य प्राप्ति की चिन्ता न करूं।
इनमें यदि हो न नाता तो,
प्रेरणा की कैसी ज्योति जगाऊं?
दिये का फिर क्या करूं?

किन्हीं सम्भावनाओं से डरे
तो हर कर्म से भागे हम।
जो भूमिका हमारे लिए थी नियत,
नाट्य अधूरा छोड़, रंगमंच से भागे हम।
यूं कायर की पदवी पाई,
मित्रों से हंसी उड़वाई।
फिर एक निश्चय किया,
कुछ कर दिखाने की सौगन्ध खाई।
ऐसे अपने जीवन के तथ्य सजे,
गणित शास्त्र के बल पे अनुमान लगे,
कर्म-क्षेत्र में ऐसी एक छलांग लगी
जहां पुल न था
वहीं से पार जाने की धृष्टता करी।

मेरे जीवन में अन्धेरे कैसे बढ़े,
मुझे भान नहीं हुआ।
अवसर मेरे करीब से निकले,
मुझे ज्ञान नहीं हुआ।
मेरे स्वभाव में दूरदर्शन नहीं,
इस न्यूनता से मेरा परिचय नहीं हुआ।
पीछे मुड़े जो बरसों बाद,
उस सबका ध्यान तब हुआ।
कहां, क्या, कैसे खोया,
ये जान लेने पर भी,
जो हो चुका सो न कोई बदल पाया।

सब पाया और
पाने के पीछे एक विचार आया
क्या यही था वह सब
जिस पे जीवन वारा ?
इसी में थी क्या मेरी आत्म-सम्पूर्ति ?
या फिर कोई और है
यज्ञ की महापूर्ति ?
विस्तृत जगत की विषय तृष्णा
मेरे लिए केवल दो इच्छा
आत्म-सन्तुष्टि, ईश्वर की चाहना।

"मैं हूं" यही है यथेष्ट क्या ?
अस्तित्व का रूप क्या रंग क्या ?
प्रश्न यह है अर्थहीन क्या ?
मेरे लिए निरन्तर खोज—मैं क्या ?
ब्रह्माण्ड का अंश नक्षत्र की लपेट
या फिर, सृष्टि का संहार क्या ?
मेरे ही यह सब रूप क्यों ?
मैं इन सबका सृजनहार क्यों ?
मेरे यह सम्भव आकार मेरे लिए ही
प्रश्न क्यों ?

कहते हैं जन्म-मरण के सिलसिले में
कर्मदण्ड है निहित।
मेरे लिए एक ही जन्म में
स्वर्ग-नर्क है दर्शित।
पश्चाताप की आग में जलने से
है कौन-सा नर्क भयंकर?
घुटन की व्यथा से
कौन रोग है बढ़कर?
मरने के बाद के गणित को कौन पूछे?
पाप पुण्य के निर्णय तो
संग-संग ही हो लें!

कर्म फल की वह बात करें
किस अन्धेरी रात की सम्भावना ?
किस दिशा का अनुमान लगाएं
फिर किस उजाले की करें कल्पना ?
प्रत्येक कर्म से पहले हम मिमांसा करें
किन उत्तरों की प्रतीक्षा ?
जीवन जो चले सहस्र मील
समय की दूरी पार करे
तभी उस प्रकार कर्म का क्रम चले ?

आत्मा की कैसी यह चीखी पुकार
जो मुझे अन्धेरे में जाने को वाधित करे ?
जिस अंधेरी गली में कोई न जाए
मेरे पग ही क्यों मुझे उधर ले जाए ?
यह जान कर भी कि है आँख स्थूल
अन्धेरों के आगे तो यह न बढ़ पाए
फिर भी किस प्रकाश की आस मुझे
जो मेरी लगन बढ़ाए, मेरा साहस जुटाए ?
दबी अधूरे ज्ञान के बोझ तले,
आत्मा, एक दिव्य प्रकाश चाहे।
अजान मानस—उन्मुक्त पक्षी,
अधूरा ज्ञान भ्रान्ति के जाल बनाए।
यह हो सम्पूर्ण या फिर न हो,
कच्ची पहचान से तो मुझे नियति बचाए !

मैं घूमूं भले
मंच तो न यह घूमे
और दोनों ही यदि घूमें
परिवर्तन की वह दोहरी गति
हममें कैसे रमे
मेरे चाहने न चाहने से
स्थिति का क्या नाता ?
हम गर्दिश में फिके कण
हम तो घूमें ही घूमें !

क्षणिक आनन्द के अवसर
जो मेरी राशि के संग बंधे
वे मेरे लिए विषय मिमांसा के प्रश्न बने।
उन्हें लुटाऊं कुछ अभागों में
उनके लिए ये आशा के दीप बनें!
या फिर? अपने सुख का सामान जुटें।
विवेक का यह बोझ
मेरे लिए मार्ग-रोधक बने
प्रत्येक अवसर—उसका क्यों और कैसे
मेरी राशि के साथ ये क्यों यह भी बंधे?

बहारों के वे रंग ये उन्मादी उद्गार,
बसन्त एक बाहर तो है एक भीतर।
किधर से उठाऊं कहां से समेटूं ?
क्षणिक-सा यह उत्पात तत्वों के अन्दर।
यदि हो सके तो यही निरन्तर।
मैं हूं आज इक भाग इसका,
रहूं कल कहीं और, नहीं ज्ञान इसका,
यही क्षण हैं अनमोल करूं पान इनका !

जीवन तथा जीवन के आधार क्या ?
सदियो से यह पहेली थी
पहेली ही रही ।
पुण्य और पाप ही हैं कर्म की परख
या इन्द्रियों के सुख में सभी कुछ निहित
पहेली तो सुलझी नहीं,
पहेली ही रही ।
क्षणों का खोना, पलो का बढ़ना
आयु का घटना, दिनों का यह क्रम—
तुच्छ बेमाना ?
प्रश्न ये युगों से, प्रश्न ही रहे,
और अभी वे उत्तर बने तो नही !

भीड़-भड़कों में गए इक आस ले के,
कही कुछ अपनत्त्व हो तो लौटें उसका
अंश ले के,
सुन्दर चेहरे देखो, कहकहे भी बहुत सुने,
फिर ! उनमें एक अहसास पाया
भाव जो छुपे मेरी अनुभूतियों में
उन्हीं को वहां भी बिखरे पाया ।
शोर चीरता वहां वीराना जो देखा
उसी खजाने से मैं झोली भर लाया
एक और सफ़र यों व्यर्थ हुआ
जो भाग्य में लिखा न था
वह कही और भी न पाया ।

छलनी को देखा एक उदासी छाए ।
बालू के कण जो नीचे गिरे,
मानों अस्तित्व के अंश बिखरें,
और किसी बेनाम अतीत की,
खाई में गिरे एक रूप हो जाएं
विधि ने तो मुझे केवल जीवन दिया
समय की छलनी अपने हाथ ही में रखी
विधाता के हाथ हेतु मनमाने
मेरे लिए भाग्य रेखाओं के बीच
संकरी-सी राहें !

मेरे जीवन का सिलसिला सीधा रहे
उसमें कोई विकार न हो
न ही छलकपट हो,
यह मैंने चाहा।
आकांक्षा एक सीमा तक रहे
कोई विषय परिस्थिति न लाए
जो मुझे गिराए
यह मैंने चाहा।
पराकाष्ठा तक जो पुण्य जाए
वह भी विकार का रूप पाए
पुण्य की वैसी सीमा न आए
यह मैंने चाहा।
चाहने और पाने के बीच
असमानता—एक दूरी रहे।
उसी में समस्त जीवन बहे,
यह कब मैंने चाहा ?

समय के भी तो कई पड़ाव है
आज हम इस पड़ाव में
तो कल कहीं और हैं
बहार आज इसमें
वह भोली-सी मुस्कान
यह बच्चों के उत्पात।
बच्चों के मुख से वह
फूल की बरसात।
प्रहर हो भी लम्बा,
पर नहीं है यह शाश्वत।
गुजर होगा कल किसी और प्रहर।
वीराने बाहर यह सूने से मंजर
बिखेरूं वहां मैं पुरानी जो यादें
बैठा न पाऊं वह पड़ाव इस पर
दैवी नियम यह सृष्टि का इक अंश
इसे समझूं, बनाऊं न असम्भव को सम्भव

बहुत प्रतीक्षा के बाद
वर्तमान के ये क्षण
आए भी तो मैंने हाथ से जाने दिए।
ये कैसी उधेड़-बुन विचारों की,
जो भविष्य के सपने तो सजाए,
पर वर्तमान से परे भी ले जाए।
इसे मन की दुर्बलता कहूं,
या अविवेक का धुंधलका ?
नाम का परिचय इसे दे भी दूं,
तो यह किस काम आए,
असमंजस से परिस्थिति जो उपजे
वह तो वहीं की वही रहे
नामकरण से न ये बनें न ही बिगड़ें।

पहाड़ की जिन चोटियों पर हम खड़े,
वहां से चारों ओर एक ही दृश्य था,
सब हरा-ही-हरा,
कहीं फ़ीका तो कहीं गहरा।
प्रकृति का यह सौन्दर्य मुस्काता,
उसमें खड़ी सभ्यता की वे दिवारें,
उनके पीछे क्या-क्या रहस्य थे छिपे ?
कुछ पहचाने, बहुत अजाने से
मानव का मानव के प्रति,
राग, द्वेष, द्वन्द्व बेमाने से।
खेल खेल मे नीति, फिर प्रहार
हार-जीत के विभिन्न पैमाने से !
उन वादियों में जाऊं
सभ्यता की उन्नति ? या ह्रास ?
इसे जान पाऊं
यह हो ज्ञान का कारण, या फिर व्यथा ही पाऊं।

यह साकार न होने वाले सपने
और उनके रचे व्यूह जो मैंने देखे।
आत्म-सन्तुष्टि की पराकाष्ठा,
जीवन वसन्त,
इच्छाओं के फूल उनमें जो मैंने देखे
कितने खिले ? या न खिले ?
उनके अनुपात, क्या उनके अनुमान
सपनों के यह अंश तो न मैंने देखे।

उनकी मुस्कानें जो हिस्से मेरे आईं
हम उनको जोडते गए।
इक आस, इक उद्देश्य लिए,
कभी यह एक पर एक जुड़े,
पहाड़ बने,
और मुस्कानो के वे ढेर
लम्बे कहकहे बने।
हम उनमे खो जाए,
पल भर को यथार्थ भूल पाएं।
यह पहाड़ मेरी श्रद्धा और आसरा का केन्द्र बनें।

ये उत्सव ये मेले,
खोखले कहकहे, वे पत्तों के खेल ।
हमें जो बुलाए, हम चले जाएं
कहीं हास्य और कहीं
संगीत की लहरें
उनमें मिले व्यंग्य, छलकपट लिपटे
अपने ही जी से
जो कारण मैं पूछूं
प्रश्न मेरे मन में यह हलचल मचाएं
सभ्यता के रंग ये मुझे न रास आएं ।

चाह तो बस यही है
कि आसमानों के पार देखूं।
जो अदृश्य, उसकी नीव पर क्यों
उद्देश्य बनाऊं,
आंख देखे समाचार पर मैं कर्मचक्र चलाऊं।
अमुक शास्त्र में यह लिखा,
उक्त धर्म का यह अनुमान,
किसी और की अनुभूति के सहारे
मैं क्यों जीवन नाट्य रचाऊं?

ये उलझी-उलझी-सी परिस्थितियां,
ये बिखरे-बिखरे से तनाव,
चारों ओर से डालें यह दबाव।
जीवन-मृत्यु के बीचका दुराव।
सारी राह ही क्यों कांटों का जाल ?
हम भागे इनसे, कांटो को पीछे डाल !
और भागते ही चलें,
रुकें जो केवल पल-भर,
दिल की बढ़ती धड़कने साथ
और अवाक मैं ?
समस्या जो भीतर थी
वह भूले ही ले आये साथ।

ये कैसे रहस्य
जिन्हें जानने को मन उत्सुक, संकुचित भी,
पीछे झांकूं कुछ भेद पाऊं
कुछ पहचान बढ़े, पर उलझन भी।
प्रयास की सफलता का क्या पैमाना पकड़ूं
'जिज्ञासा तो शान्त हो प्रेरणा बढ़े ही,
कैसी दुविधा में मन फंसा,
भेद जानना चाहूं, जानने से मन डरे भी
परिस्थिति को मैं कैसे देखूं,
कि देखकर उसे न देखूं भी!

विचार की एक तरंग थी,
सम्भावना की सैकड़ों नौकाएं उभरें।
इस एक ही प्रेरणा से उद्वेलित,
प्रयास न जाने किस ओर मुड़े,
फिर कौन-सी नौका मिले !
किस किनारे जा लगे !
पहले प्रयास व उद्देश्य के सपन बीच,
न जाने कैसे-कैसे संघर्ष गुजरें।
प्रयास प्रेरणा के बल से चले,
कर्मयोगी के विवेक पर टिकें,
संघर्ष की कठिनाई पराजय की सम्भावना
से न डरें न ही बिगड़ें !

मेरा यह दीपक जले या फिर बुझे,
उजाले का आकार न बढ़े न ही घटे।
दीये की समर्थता मेरी हो भूल भले,
किन्तु यही तो जीवन का आधार बने।
जीवन हो तुच्छ, या विराट रूप धरे,
कणों के जोड़ से ही तो महल विशाल बने।
हम अपनी योग्यता का स्वरूप समझें,
कदाचित् यही फिर प्रगति की योजना बने।

ग्रहों की गर्दिश में
है जन्म मरण का सिलसिला निहित।
कहां मेरे कर्म का फल मिले मुझे,
कहां ग्रहों के फेर में मैं सीमित,
ज्ञान की किरण इस सिलसिले का भेद न पाए !
कहीं ऐसा हो जाए,
दो क्षण हम दिव्य दृष्टि पा जाएं,
उसी में कृष्ण का हो दर्शन,
ऋषियों का भेद पा जाएं !

जल की स्थिर धारा के मौन तले
कैसे-कैसे तुफान छिपे।
निश्चल जो दिखे, क्या वह चल न सके !
उदासीनता का जो आवरण रहे,
मर्म भेदी व्यथा का आकार ढके।
शब्दों का नाद हो या आंसुओं की बौछार
दोनों भीतरी तुफान को सतह पे पटकें।
आत्म-नियन्त्रण हो और मन की स्थिरता
तुफान के कारण को दबा के रखें।

ये नाते वे परिजन, मंच पर,
आस्था के कैसे-कैसे पात्र सजाए मैंने।
और चोटें जैसे-जैसे खाईं मैंने
भक्ति के पुतले एक-एक कर गिराए मैंने।
आस्था थी मेरी, भ्रान्ति भी थी मेरी
किसी और को दोषी न ठहराया मैंने।
और जब-जब लगा हम नितान्त अकेले रहे
तो एक नया प्रतीक पाया मैंने।
भक्ति का वही सच्चा पात्र,
उसकी शक्ति में निर्वाण देखा मैंने।
स्थूल आँख बन्द जो की,
फिर आन्तरिक सुख पाया मैंने।

भाव जो भाप बन आंखों में उमड़े,
वे कितने तपे होंगे कैसे जले होंगे !
पीड़ा जो हृदय की गहराई में उतरी
विस्फोट बनी,
अस्तित्व के टुकड़े तो उसने किए होंगे !
विवरण उसका दे भी दूं
तो मेरा क्या बने, किसी का क्या बिगड़े !
जर्जर मन व्यथा में डूबा,
न कोई उसे निकाले, न वह स्वयं निकले।
मेरे लिए स्थिति क्यों बनी शाश्वत
कभी तो यह अतीत में बदले !

मेरी दिनचर्या बदली,
अस्तित्व के रूप बदले ।
संघर्ष कुछ ऐसे बढ़े,
कि मेरे उद्देश्य बदले ।
प्रारम्भ तो कुछ और था,
पर यात्रा का अन्त बदले
मेरे जीवन से बंधे जो नाते बढ़े,
धारा के किनारे कुछ ऊंचाई में बढ़े
उधर धारा का रुख बदले ।
क्रान्तिकारी बच्चे, जीवन शून्य करके निकले,
उनकी राह जो बदली तो अब मेरी भी
राह बदले ।
अब तक जो हुआ अतीत में, सो तो न बदले,
पुर्नजन्म कुछ पाऊं ऐसा ।
कि मेरा भविष्य तो बदले ।

सभ्यता के बीचो बीच घिरे,
पीठ मोड़ें तो लगे जंगल में खड़े।
संस्कृति के महान प्रतीक आगे
फिर भी जैसे विराना आगे,
जीवन सुरक्षा कहां पाएं;
ताज के प्रेम मन्दिर में
या आगरा के किले में ?
लोग कहे सभ्यता कुछ आगे बढ़ी,
मैं कहूं विकार ने कुछ गति पकड़ी।

ये ईंटें, ये कांच, ये ऊंचे-ऊंचे भवन,
सभ्यता की शान बढाएं।
मानवता के वृक्ष गिराएं।
ये बाहरी आकर्षण, यह मन की अशान्ति,
असभ्यता के कैसे विपरीत मार्ग बनाएं।
पानी के भीतर सुरंग,
पुल के ऊपर पुल,
एक कहानी सुनाएं।
थैले में बन्द सिसकता नवजात शिशु
एक दूसरी ही कथा सुनाए।
नैतिकता, दर्शन, शास्त्र न यह गुत्थी सुलझाएं।
मैं इसे गणित का प्रश्न समझूं
अथवा दार्शनिक तर्क का धागा ?
अस्तित्व के ऐसे प्रतिकूल
अंशों के कैसे समीकरण बनाऊं।
सभ्यता की वह कौन-सी उचाई होगी ?
दिव्यता का वह कैसा रूप होगा ?
जो इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर होगा !

क्षितिज के पीछे देख पाऊं क्या ?
यहां तो सामने का दृश्य ही अदृश्य !
दूरदर्शिता स्वाभाविक गुण हो भी तो क्या ?
परिस्थिति के चारों ओर तो है धुन्ध ही धुन्ध !
मेरा अध्ययन धुन्ध को छेदे भी तो क्या ?
विवेक के स्पन्दन पर तो दबाव-ही-दबाव
सागर का किनारा, नौका देखे तो क्या ?
निकट की लहरों से तो खिलवाड़-ही-खिलवाड़।
हेतु का निर्णय सामने हो भी तो क्या,
उस निर्णय पर हो जो विधाता का अधिकार।

एक वध हो, मृत्युदण्ड पायें,
सैकड़ों वध करे, दुर्घटना कहायें।
मात्र राजनीति के ये खेल कहलायें
सभ्यता की विडम्बना के,
हमें अनेकों रूप दिखायें।
ये जानलेवा कार्यक्रम, घृणा के उद्‌गार,
और कितने वध हों,
जो सभ्यता की आत्मा झुंझलाएं !

कैसे-कैसे शत्रुओं की बात हुई,
किस-किस की मीमांसा,
ये शान्ति के सम्मेलन थे।
शस्त्रों के अनुमान लगे,
विरोधी शक्तियों के बल तुले,
कुछ भेद खुले, बहुत से न खुले।
मन के भीतर जो शत्रु छिपे,
वे अदृश्य रहे, रहस्य बने,
अनियन्त्रित इच्छाओं के समूह,
आकांक्षा का आवरण ओढ़े रहे।
मानव की हिंसक वृत्तियां,
स्वाभाविक गुणों में प्रतिद्वन्द्व,
सम्मेलन के ये विषय न थे,
उसकी कार्यसूची में छपे न थे।

कुछ आंकड़ों के अनुमान बदले,
उनके पारस्परिक अनुपात बदले।
निष्ठा की पात्र जो स्थिरता थी,
उसके मूलभूत आधार बदले।
उस परिवर्तन के हैं जो भी कारण,
उनसे मेरे दृष्टिकोण तो न बदले।
आन्तरिक व बाहरी
दो भिन्न दशाओं की असाम्यता
हम उससे किस प्रकार निपटें?
भविष्य की आस कुछ बंधे ऐसे
ध्वस्त अतीत के पीछे आत्मा न भटके।

एक गाड़ी ली, फिर एक घर बनाया,
कैसी तुच्छ खुशियों से जीवन सजाया।
महत्वपूर्ण थे ये नग जिन्होंने घमण्ड जगाया,
अस्तित्व के महान उद्देश्यों से मुंह फिराया।
क्या यही वह सब था जिसे करने को जीवन पाया?

साथ के घर से जो खाकर निकले,
मां ने करी पिटाई ।
सब मानव समान है, सभी है भाई-भाई,
मां ने ही यह बात बताई ।
दो घरों के बीच चन्द ईंटें,
मानवता के बीच दीवार बनाई ।
उनका स्नेह, हमारा स्नेह,
समझ न आई मां री पिटाई ।

कृत्रिमता के ऊपर कृत्रिम आवरण,
यह कैसी सज्जा सजाएं,
व्यक्तित्व के साधारण गुण छिपाएं।
मुझे तो पेड के
भिन्न हरे रंग ही लगें भले,
फिर उनमें क्यों बिजलिया लटकाए ?
शिष्टता के नीचे जो छिपे धोखे,
उन वारों से बच सकें तो बच जाएं;
फिर प्रकृति को प्रकृति से ही सजाएं।

मानव का वहशीपन जो बढा,
कुत्ते को उसने काट दिखाया,
पत्रकारों ने यह जो चित्र दिखाया,
पाठकों को तनिक विस्मित न पाया।
चण्डी बनूं, इस वहशीपन का संहार करूं ?
या फिर तथागत आत्मा
भटके मानव का मार्गदर्शन करूं ?

सुधार की ये राहें कितनी अकेली हैं,
साथ कोई भी न चलने को तैयार है,
मैंने भी सोचा हम अकेले ही बहुत हैं,
कम-से-कम विचारो के साये तो साथ हैं ?
हमने जो सोचा वह गलत था ।
राहों में तो और भी कई कुछ था ।
विरोध था प्रतिरोध भी था,
स्वार्थियो की ओर से प्रहार था,
प्रतिद्वन्द्वियों का तो पुरा गुट था ।
हमारी ओर नितान्त इक उद्देश्य था ।
समाज की व्यवस्था के ये दावेदार थे,
समाज-सुधारको के विरुद्ध रिवाज थे,
शास्त्रों के भ्रान्तिपूर्ण अनुवाद थे,
और उनपे निर्मित बेनीव अनुमान थे ।
समूचा जीवन बीते जो एक-एक से लड़ूं,
लोहे-से-लोहा काटने का यत्न करूं ।
एकता जो उधर है, मतभेद इधर भी हटाऊं,
विधायक सुधारक एक करूं
और फिर नई क्रान्ति रचाऊं !

विदेशी आया सभ्यता को खूब हिलाया,
पुरुष को विद्यालय के द्वार दिखाया,
संस्कृति से घृणा दी, दिया पाश्चात्य दिखावा,
जो चमकता, वही है सोना, यह बताया।
गुलामी दी उसे, पर जंजीरें नहीं,
उसके मानस को ही कारागृह बनाया।
हार मानी अन्त में, पर जन-विद्रोह से नहीं,
हार गया विदेशी, मां के अपराजेय धर्म से,
निष्ठा, आस्था, धर्म उसकी
नींव थीं, परिवार की, समाज की,
लाख यत्न से वह उसतक पहुंच न पाया।

उधर गरीबी हटाओ के नारे चुने,
इधर गरीबी बढाओ की नींव चिने,
नींव और भवन मे जो दरार रहे,
वही कर्म और लक्ष्य के बीच रहे
यह कैसे उपदेश कहे,
कैसे षडयन्त्र रचे,
जनता के लिए तो शोषण के बस
पुतले बदले,
वे कहें जनतन्त्र हम कहें मन तन्त्र
वे मान गए बोले,
भेद सिर्फ एक शब्द का है तो चलेगा
क्रान्ति से कुछ और तो न बदलेगा !

मेरे चारों ओर कलों का शोर है।
तकनीकी सभ्यता का गुणगान।
ऐसे भीषण शोर में एक छोटी सी आवाज है
वह धीमी है बेजान है।
वह मेरी आत्मा की आवाज है।
दबी है मशीनो के तले,
मशीनों के झपताल पर बेताल है।
उसे एक नया संगीत चाहिए,
विभिन्न रागों का माधुर्य चाहिए।
एक संगीत प्रेमी चाहिए
अनवरत सुनने वाला चाहिए।

स्रष्टा की रचना का वर्गीकरण, जो हुआ
समाज के टुकड़े हुए और
वह अलग-अलग श्रेणियों में बंटा।
मैंने श्रेणी से जो मुक्त होना चाहा,
साम, दाम, भेद, दण्ड का चक्कर चलाया।
पुण्य की कसौटी पर मैंने अपनी
चाह को परखा,
और श्रेणी से मैं भाग आया।
निर्मल स्वच्छ वातावरण में जो विचरा,
चारों ओर एक ही शक्ति को रचा पाया।
किया जो सेवन उसका,
तो शान्ति का अनोखा रस पाया
भगवान को मैंने कोई नाम न दिया,
किन्तु रस का जो वर्गीकरण न हुआ,
भगवान का कोटिशः धन्यवाद किया!

संहार के रास्ते जो बने इतने
सृष्टि का अन्त जीवन के ऊपर मंडराए ।
क्षण-क्षण हम जियें असुरक्षित से,
निर्माण की कोई प्रेरणा न पाएं ।
कौन कहता है मृत्यु इक बार आए ?
यहा तो हर पल उसी का सन्देश लाए ।
वह कैसा भविष्य और क्या उसके सपने,
जो कभी भी हम पिंजर न भूल पायें ?
भविष्य से भयभीत हों,
बुझे से वर्त्तमान में ही न रह पाएं ।
प्रतिरोध तो किए अनेकों जग में
सहार के दूत न जा सके मनाएं !

न्याय की दहलीज़ पे गए
इक आस ले के,
हम नितान्त अकेले उखाड़ें
बीज अन्याय के।
हर मानव समान हो,
निर्दोष कोई अपराधी न हो।
और वहां तो कई और मेरे साथ थे
'हम सभी समाज सुधारक'
कहें यही,
उत्सुकता जो शान्त हुई,
तो भीषण एक व्यथा हुई।
चारों ओर झूठ की कसौटी पर
तथ्यों की परख हुई।
फिर न्याय के नाम पर
अन्याय की इक धुन्ध छाई।

विषम परिस्थिति कुछ ऐसी आई,
भविष्य का दर्शन कल से आगे न जाए।
बच्चों के बच्चे कैसे जीयें,
क्या-क्या करें न करें,
कौन उसका अनुमान लगाये, आस बंधाये ?
यहां तो एक ही उल्टा पग
सृष्टि को कल से आगे न ले जाये।

निर्वाण की आकांक्षा करूं,
मरने से भयभीत रहूं।
अद्भुत ईश्वर की माया फिर भी,
दो विपरीत दिशाओं का कैसे राही बनूं ?
निर्वाण का विचार छोड़ूं,
या मृत्यु का स्वागत करूं ?
नेह मोह से वैराग्य लूं,
तो शेष राह पार करूं।
स्तुति कदाचित् यही करूं,
विवेक के साथ ही रहूं!

भूत को भूत न समझा, द्वार बन्द न किया।
अतीत के खुले द्वार से वर्तमान जाने न दिया।
दूर दृष्टि से केवल सुखद रंग देखे,
'अभी' के विविध रंगों से परिचय न किया।
लुटे जो क्षण थे वे पकड़ से परे ही रहे
और 'अभी' के पलों को मैंने लुटने ही दिया।

भीतर के अन्धेरों को घेरे
अभियान से पहले की रात थी ये।
आगमन और अभियान,
एक लड़ी के दो सिरे,
फिर क्यों दोनों समान न थे ?
बीच लड़ी का भाग जिसे जीवन कहें
भेद असमानता का क्या उसी में रहे ?

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२	१०	गौत	गौतम
४८	८	विपय	विपम
५४	३	विपय	विपम
५४	१०	ये	थे
५५	५	यही निरन्तर	यही हो निरन्तर
५७	४	देखो	देखे
५९	६	विपय	विपम
७३	६	दोणी	दोपी
७७	२	वटाएं	वढाए